ऋषय ऊचुः

राजपुत्र यथा विष्णोराराधनपरैर्नरैः। कार्यमाराधनं तन्नो यथावच्छ्रोतुमर्हसि ॥५२॥
बाह्यार्थादखिलाच्चित्तं त्याजयेत्प्रथमं नरः। तस्मिन्नेव जगद्धाम्नि ततः कुर्वीत निश्चलम् ॥५३॥
एवमेकाग्रचित्तेन तन्मयेन धृतात्मना। जप्तव्यं यन्निबोधैतत्तन्नः पार्थिवनन्दनः ॥५४॥
हिरण्यगर्भपुरुषप्रधानाव्यक्तरूपिणे। ॐ नमो वासुदेवाय शुद्धज्ञानस्वरूपिणे ॥५५॥
एतज्जजाप भगवान् जप्यं स्वायम्भुवो मनुः। पितामहस्तव पुरा तस्य तुष्टो जनार्दनः ॥५६॥
ददौ यथाभिलषितां सिद्धिं त्रैलोक्यदुर्लभाम्। तथा त्वमपि गोविन्दं तोषयैतत्सदा जपन् ॥५७॥

इति श्रीविष्णुमहापुराणे प्रथमेऽशे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

बारहवाँ अध्याय

श्रीपराशर उवाच

निशम्यैतदशेषेण मैत्रेय नृपतेः सुतः। निर्जगाम वनात्तस्मात्प्रणिपत्य स तानृषीन् ॥१॥
कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यमानस्ततो द्विज। मधुसंज्ञं महापुण्यं जगाम यमुनातटम् ॥२॥
पुनश्च मधुसंज्ञेन दैत्येनाधिष्ठितं यतः। ततो मधुवनं नाम्ना ख्यातमत्र महीतले ॥३॥
हत्वा च लवणं रक्षो मधुपुत्रं महाबलम्। शत्रुघ्नो मधुरां नाम पुरीं यत्र चकार वै ॥४॥

को उनकी आराधना जैसे करनी चाहिए उसे तुम हमलोगों से अच्छी तरह से सुनो ॥५२॥ मनुष्य को चाहिए कि वह सर्वप्रथम समस्त बाहरी पदार्थों से मन को हटा दे और अपने निश्चल मन को उन जगत् के आश्रय स्वरूप परमात्मा में लगा दे ॥५३॥ राजकुमार ! इस तरह एकाग्र मन से तन्मय होकर जिस मन्त्र का जप करना चाहिए उसे तुम सुनो॥५४॥ हिरण्यगर्भ, पुरुष, प्रधान तथा अव्यक्त स्वरूप, शुद्ध ज्ञान स्वरूप भगवान् वासुदेव को नमस्कार है॥५५॥ 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय' इस मन्त्र को तुम्हारे पितामह ऐश्वर्य सम्पन्न मनु ने प्राचीन काल में जपा था, उससे भगवान् जनार्दन प्रसन्न हुए थे और प्रसन्न होकर उन्होंने मनु को अभिलषित सिद्धि भी प्रदान की थी। उसी तरह तुम भी इस मन्त्र का निरन्तर जप करते हुए भगवान् गोविन्द को प्रसन्न करो ॥५६-५७॥

इस तरह श्रीविष्णुमहापुराण के प्रथम अंश के ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥११॥

ध्रुव की तपस्या से प्रसन्न होकर श्रीभगवान् का प्राकट्य और ध्रुव को वरदान प्रदान

श्रीपराशर महर्षि ने कहा— हे मैत्रेय ! इन सारी बातों को पूर्णरूप से सुनकर राजकुमार ध्रुव उन ऋषियों को प्रणाम करके उस उपवन से निकल पड़े ॥१॥ हे द्विज ! अपने को कृत-कृत्य के समान मानकर ध्रुव यमुना के तटपर मधु नामक अत्यन्त पवित्र वन में गया ॥२॥ सर्वप्रथम मधु नामक दैत्य उसी वन में रहने लगा था अतएव उस का पृथिवी पर मधुवन नाम विख्यात हुआ ॥३॥ मधु के पुत्र लवणासुर को मारकर शत्रुघ्न ने वहीं पर मधुरा नाम की नगरी को बसाया ॥४॥ उस मधुवन में देवाराध्य श्रीहरि का सानिध्य निरन्तर बना रहता है उसी सर्वपापप्रणाशक

यत्र वै देवदेवस्य सान्निध्यं हरिमेधसः । सर्वपापहरे तस्मिंस्तपस्तीर्थे चकार सः ॥५॥
मरीचिमुख्यैर्मुनिभिर्यथोद्दिष्टमभूत्तथा । आत्मन्यशेषदेवेशं स्थितं विष्णुममन्यत॥६॥
अनन्यचेतसस्तस्य ध्यायतो भगवान्हरिः । सर्वभूतगतो विप्र सर्वभावगतोऽभवत् ॥७॥
मनस्यवस्थिते तस्मिन्विष्णौ मैत्रेय योगिनः । न शशाक धरा भारमुद्वोढुं भूतधरिणी ॥८॥
वामपादस्थिते तस्मिन्ननामार्द्धेन मेदिनी । द्वितीयं च नानामार्द्धं क्षितेर्दक्षिणतः स्थिते ॥९॥
पादाङ्गुष्ठेन सम्पीड्य यदा स वसुधां स्थितः । तदा समस्ता वसुधा चचाल सह पर्वतैः ॥१०॥
नद्यो नदाः समुद्राश्च संक्षोभं परमं ययुः । तत्क्षोभादमराः क्षोभं परं जग्मुर्महामुने ॥११॥
यामा नाम तदा देवा मैत्रेय परमाकुलाः । इन्द्रेण सह सम्मन्त्र्य ध्यानभङ्गं प्रचक्रमुः ॥१२॥
कूष्माण्डा विविधै रूपैर्महेन्द्रेण महामुने । समाधिभङ्गमत्यन्तमारब्धाः कर्त्तुमातुराः ॥१३॥
सुनीतिर्नाम तन्माता सास्रा तत्पुरतः स्थिता । पुत्रेति करुणां वाचमाह मायामयी तदा ॥१४॥
पुत्रकास्मान्निवर्त्तस्व शरीरातययदारुणात् । निर्बन्धतो मया लब्धो बहुभिस्त्वं मनोरथैः ॥१५॥
दीनामेकां परित्यक्तुमनाथां न त्वमर्हसि । सपत्नीवचनाद्वत्स अगतेस्त्वं गतिमर्मम ॥१६॥
क्व च त्वं पञ्चवर्षीयः क्व चैतद्दारुणं तपः । निवर्ततां मनः कष्टान्निर्बन्धात्फलवर्जितात् ॥१७॥
कालः क्रीडनकानान्ते तदन्तेऽध्ययनस्य ते । ततः समस्त भोगानां तदन्ते चेष्यते तपः ॥१८॥
कालः क्रीडनकानां यस्तव बालस्य पुत्रक । तस्मिंस्त्वमिच्छसि तपः किं नाशायात्मनो रतः ॥१९॥

तीर्थ में ध्रुव ने तपस्या की ॥५॥ मरीचि आदि महर्षियों ने जैसा उपदेश दिया था उसी तरह से अपने हृदय में स्थित रूप से भगवान् का वह ध्यान करने लगा ॥६॥ अनन्यमना होकर श्रीहरि का ध्यान करने वाले उस ध्रुव के हृदय में सभी भूतों में अन्तर्यामी रूप से व्यापक रहने वाले श्रीभगवान् अवस्थित हो गये ॥७॥ हे मैत्रेय ! योगी ध्रुव के मन में भगवान् विष्णु के स्थित हो जाने पर सभी भूतों को धारण करने वाली पृथिवी, उसके भार को नहीं धारण कर सकी ॥८॥ उसके बायें पैर पर खड़े होने के कारण पृथिवी का बायाँ आधा भाग झुक गया । फिर उसके दाहिने पैर पर खड़े होने पर पृथिवी का दाहिना आधा भाग झुक गया ॥९॥ जब वह अपने अङ्गूठे से पृथिवी को दबाकर खड़ा हुआ, उस समय सभी पर्वतों के साथ पृथिवी काँपने लगी (भूचाल आ गया) ॥१०॥ नदियाँ, नद तथा समुद्र अत्यन्त संक्षुब्ध हो गये । हे महामुने ! उनके संक्षुब्ध होने पर देवगण भी अत्यधिक क्षुब्ध हो गये, और घबरा गये ॥११॥ हे मैत्रेय ! उस समय याम नामक देवगण अत्यन्त व्याकुल हो गये और इन्द्र के साथ मन्त्रणा करके ध्रुव के ध्यान को भङ्ग करने का उपाय करने लगे ॥१२॥ हे महामुने ! कुष्माण्ड नामक देवता इन्द्र के साथ अनेक रूप धारण करके उसकी समाधि को भङ्ग करना प्रारम्भ किया ॥१३॥ मायानिर्मित ध्रुव की माता सुनीति उसके समक्ष हे पुत्र ! हे पुत्र !! कहकर आँखों में आँसू भरकर कहने लगी ॥१४॥ पुत्र ! तुम इस शरीर का शोषण करने वाले इस भयङ्कर तपस्या को करना छोड़ दो, मैंने अनेक प्रकार की कामनाओं से तुम्हें प्राप्त किया है ॥१५॥ सौत की कटु वाणी के कारण अकेली, दीन तथा अनाथ मुझको छोड़ देना तुम्हारे लिए उचित नहीं है । मुझ निराश्रित के लिए तुम ही आश्रय हो ॥१६॥ कहाँ तो तुम्हारी पाँच वर्ष की अवस्था और कहाँ यह भयङ्कर तपस्या ? इस निष्फल तथा कष्टप्रद आग्रह से तुम अपना मन मोड़ लो ॥१७। यह समय तो तुम्हारे लिए खेलने का है, उसके पश्चात् तुम्हारी अध्ययन की बेला होगी । उसके पश्चात् सभी भोगों को भोगने का समय होगा । सबके अन्त में तपस्या का समय होता है ॥१८॥ हे पुत्र ! तुम्हारा जो खेलने का समय है, उसी समय में तुम तपस्या करने में लगे हो; तुम अपना

मत्प्रीतिः परमो धर्मो वयोऽवस्थाक्रियाक्रमम् । अनुवर्त्तस्व मा मोहान्निवर्त्तास्मादधर्मतः ॥२०॥
परित्यजति वत्साद्य यद्येतन्न भवांस्तपः । त्यक्ष्याम्यहमिह प्राणांस्ततो वै पश्यतस्तव ॥२१॥

श्रीपराशर उवाच

तां प्रलापवतीमेवं वाष्पाकुलविलोचनाम् । समाहितमना विष्णौ पश्यन्नपि न दृष्टवान् ॥२२॥
वत्स वत्स सुघोराणि रक्षांस्येतानि भीषणे । वनेऽभ्युद्यतशस्त्राणि समायान्त्यपगम्यताम् ॥२३॥
इत्युक्त्वा प्रययौ साथ रक्षांस्याविर्बभुस्ततः । अभ्युद्यतोग्रशस्त्राणि ज्वालामालाकुलैर्मुखैः ॥२४॥
ततो नादानतीवोग्रान्राजपुत्रस्य ते पुरः । मुमुचुर्दीप्तशस्त्राणि भ्रामयन्तो निशाचराः ॥२५॥
शिवाश्च शतशो नेदुः सज्वालाकवलैर्मुखैः । त्रासाय तस्य बालस्य योगयुक्तस्य सर्वदा ॥२६॥
हन्यतां हन्यतामेष छिद्यतां छिद्यतामयम् । भक्ष्यतां भक्ष्यतां चायमित्यूचुस्ते निशाचराः ॥२७॥
ततो नानाविधान्नादान् सिंहोष्ट्रमकराननाः । त्रासाय राजपुत्रस्य नेदुस्ते रजनीचराः ॥२८॥
रक्षांसि तानि ते नादाः शिवास्तान्यायुधानि च । गोविन्दासक्तचित्तस्य ययुर्नेन्द्रियगोचरम् ॥२९॥
एकाग्रचेताः सततं विष्णुमेवात्मसंश्रयम् । दृष्टवान्पृथिवीनाथपुत्रो नान्यं कथञ्चन ॥३०॥
ततः सर्वासु मायासु विलीनासु पुनः सुराः । संक्षोभं परमं जग्मुस्तत्पराभवशङ्किताः ॥३१॥
ते समेत्य जगद्योनिमनादिनिधनं हरिम् । शरण्यं शरणं यातास्तपसा तस्य तापिताः ॥३२॥

देवा ऊचुः

देवदेव जगन्नाथ परेश पुरुषोत्तम । ध्रुवस्य तपसा तप्तास्त्वां वयं शरणं गताः ॥३३॥

सर्वनाश करना क्यों करना चाहते हो ? ॥१९॥ तुम्हारा परम धर्म मुझको प्रसन्न करना है, तुम अपनी अवस्था उम्र, तथा कर्म के अनुसार अपने धर्म का पालन करो, भ्रमवशात् तुम इस अधर्म में मत लगो ॥२०॥ हे वत्स ! यदि तुम आज इस तपस्या का परित्याग नहीं कर देते हो तो मैं तुम्हारे सामने ही अपने प्राणों का परित्याग कर दूँगी ॥२१॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** भगवान् विष्णु में मन लगे होने के कारण आँखों में आँसू भाकर विलाप करती हुयी उसे देखकर भी ध्रुव ने उसे नहीं देखा ॥२२॥ हे वत्स ! इस भयङ्कर वन में हाथ में आयुध लेकर उसे उठाये हुए भयङ्कर राक्षस आ रहे हैं, यहाँ से भग जाओ, यह कहकर वह वहाँ से चली गयी और वहाँ पर उसके पश्चात् राक्षस आविर्भूत हो गये । वे अपना आयुध उठाये हुए थे तथा उनके मुख से अग्नि की ज्वाला निकल रही थी ॥२३-२४॥ उसके पश्चात् वे ध्रुव के समक्ष अत्यन्त उग्र शब्द करने लगे । वे राक्षस अपने चमकते हुए आयुधों को घुमा रहे थे॥२५॥ निरन्तर परमात्मा योग में लगे हुए ध्रुव के सन्निकट उसे भयभीत करने के लिए सैकड़ों स्यारिनियाँ शब्द करने लगीं । उस समय उन सबों के मुख से आग की ज्वाला निकल रही थी ॥२६॥ वे राक्षस इसे मार डालो, काट डालो, खा जाओ इस प्रकार से चिल्ला रहे थे ॥२७॥ उसके बाद ध्रुव को भयभीत करने के लिए सिंह, ऊँट तथा घड़ियाल जैसे मुख वाले राक्षस गरजने लगे ॥२८॥ किन्तु जिसका मन भगवान् गोविन्द में लगा था उस ध्रुव को वे राक्षस, उनके वे शब्द, स्यारिनें तथा उनके आयुध न तो दिखायी पड़े और न सुनायी पड़े ॥२९॥ किन्तु वह राजकुमार एकाग्रचित से अपने आश्रयभूत भगवान् विष्णु को ही देखता रहा, वह किसी भी दूसरी वस्तु को नहीं देखा॥३०॥ उसके पश्चात् जब समस्त मायायें विलीन हो गयीं, उस समय ध्रुव से अपने पराजय की शङ्का के कारण देवता पुनः अत्यन्त क्षुब्ध हो गये ॥३१॥ ध्रुव की तपस्या से सन्तप्त होकर वे देवता आपस में मिलकर जगत् के अभिन्न निमित्तोपादान कारण अनादि तथा अनन्त एवं सबों के रक्षक श्रीभगवान् के शरण में गये ॥३२॥ **देवताओं**

दिने दिने कालालेशैः शशाङ्कः पूर्यते यथा। तथायं तपसा देव प्रयात्यृद्धिमहर्निशम् ॥३४॥
औत्तानपादितपसा वयमित्थं जनार्दन। भीतास्त्वां शरणं यातास्तपसस्तं निवर्तय॥३५॥
न विद्मः किं शक्रत्वं सूर्यत्वं किमभीप्सति। वित्तपाम्बुपसोमानां साभिलाषः पदेषु किम्॥३६॥
तदस्माकं प्रसीदेश हृदयाच्छल्यमुद्धर। उत्तानपादतनयं तपसः सन्निवर्त्तय ॥३७॥

श्रीभगवानुवाच

नेन्द्रत्वं न च सूर्यत्वं नैवाम्बुपधनेशताम्। प्रार्थयत्येष यं कामं तं करोम्यखिलं सुराः ॥३८॥
यात देवा यथाकामं स्वस्थानं विगतज्वराः। निवर्त्तयाम्यहं बालं तपस्यासक्तमानसम्॥३९॥

श्रीपराशर उवाच

इत्युक्ता देवदेवेन प्रणम्य त्रिदशास्ततः। प्रययुः स्वानि धिष्ण्यानि शतक्रतुपुरोगमाः ॥४०॥
भगवानपि सर्वात्मा तन्मयत्वेन तोषितः। गत्वा ध्रुवमुवाचेदं चतुर्भुजवपुर्हरिः ॥४१॥

श्रीभगवानुवाच

औतानपादे भद्रं ते तपसा परितोषितः। वरदोऽहमनुप्राप्तो वरं वरय सुव्रत ॥४२॥
बाह्यार्थनिरपेक्षं ते मयि चित्तं यदाहितम्। तुष्टोऽहं भवतस्तेन तद्वृणीष्व वरं परम्॥४३॥

श्रीपराशर उवाच

श्रुत्वेत्थं गदितं तस्य देवदेवस्य बालकः। उन्मीलिताक्षो ददृशे ध्यानदृष्टं हरिं पुरः ॥४४॥
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गवरासिधरमच्युतम् । किरीटिनं समालोक्य जगाम शिरसा महीम्॥४५॥
रोमाञ्चिताङ्गः सहसा साध्वसं परमं गतः। स्तवाय देवदेवस्य स चक्रे मानसं ध्रुवः ॥४६॥

ने कहा— हे देवदेव ! सम्पूर्ण जगत् के स्वामिन् ! परमेश्वर ! पुरुषोत्तम ! ध्रुव की तपस्या से सन्तप्त होकर हमलोग आपकी शरण में आये हैं ॥३३॥ जिस तरह चन्द्रमा अपनी कलाओं के अंश से प्रतिदिन बढ़ता है हे देव! उसी तरह यह अपनी तपस्या के द्वारा प्रतिदिन बढ़ता जाता है ॥३४॥ हे जनार्दन ! हमलोग उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव की तपस्या से भयभीत होकर आपकी शरण में आये हैं, आप उसे तपस्या करने से रोकिये ॥३५॥ हमलोग यह नहीं जानते हैं कि वह इन्द्र का पद चाहता है, या सूर्यत्व चाहता है अथवा उसे कुबेर, वरुण या चन्द्रमा का पद अभिलषित है ॥३६॥ हे ईश (जगत् के स्वामिन्) आप हमलोगों पर प्रसन्न होकर उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव को तपस्या से रोकिए और हमारे हृदय के काँटे को निकाल दीजिए ॥३७॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** देवताओं ! वह इन्द्र, सूर्य, वरुण, या कुबेर के पद को नहीं चाहता है, वह जो चाहता है, उसे मैं पूरा करूँगा ॥३८॥ देवताओं ! आपलोग निश्चिन्त होकर अपने-अपने स्थान पर जाओ तपस्या में आसक्त मन वाले उस बालक को मैं रोकता हूँ ॥३९॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** श्रीभगवान् के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर देवतागण उनको प्रणाम करके इन्द्र के साथ अपने-अपने घर चले गये ॥४०॥ उसकी तन्मयता से प्रसन्न होकर सबों के आत्म स्वरूप चतुर्भुज रूपधारी श्रीहरि ने जाकर ध्रुव से कहा ॥४१॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे उत्तानपाद के पुत्र ! मैं तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हूँ, तुम्हारा कल्याण हो, मैं तुम्हें वरदान देने के लिए आया हूँ, तुम अपने अभिप्रेत वर को माँगो ॥४३॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** देवताओं के भी आराध्य श्रीभगवान् की इस प्रकार की वाणी को सुनकर बालक ने आँखों को खोला और जिन श्रीभगवान् को ध्यान में देखता था उनको अपने सामने देखा ॥४४॥ शंख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग, धनुष तथा कृपाण धारण किए हुए तथा किरीटधारी भगवान् अच्युत को उसने साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥४५॥ सहसा उसके अङ्गों

किं वदामि स्तुतावस्य केनोक्तेनास्य संस्तुतिः । इत्याकुलमतिर्देवं तमेव शरणं ययौ ॥४७॥

ध्रुव उवाच

भगवन्यदि मे तोषं तपसा परमं गतः । स्तोतुं तदहमिच्छामि वरमेनं प्रयच्छ मे ॥४८॥

(ब्रह्माद्यैर्यस्य वेदज्ञैर्ज्ञायते यस्य नो गतिः । तं त्वां कथमहं देव स्तोतुं शक्नोमि बालकः ॥

त्वद्भक्तिप्रवणं ह्येतत्परमेश्वर मे मनः । स्तोतुं प्रवृत्तं त्वत्पादौ तत्र प्रज्ञां प्रयच्छ मे ॥)

श्रीपराशर उवाच

शङ्खप्रान्तेन गोविन्दस्तं पस्पर्श कृताञ्जलिम् । उत्तानपादतनयं द्विजवर्य जगत्पतिः ॥४९॥

अथ प्रसन्नवदनः स क्षणान्नृपनन्दनः । तुष्टाव प्रणतो भूत्वा भूतधातारमच्युतम् ॥५०॥

ध्रुव उवाच

भूमिरापोऽनलो वायु खं मनो बुद्धिरेव च । भूतादिरादिप्रकृतिर्यस्य रूपं नतोऽस्मि तम् ॥५१॥

शुद्धः सूक्ष्मोऽखिलव्यापी प्रधानात्परतः पुमान् । यस्य रूपं नमस्तस्मै पुरुषाय गुणात्मने ॥५२॥

भूरादीनां समस्तानां गन्धादीनां च शाश्वतः । बुद्ध्यादीनां प्रधानस्य पुरुषस्य च यः परः ॥५३॥

तं ब्रह्मभूतमात्मानमशेषजगतः पतिम् । प्रपद्ये शरणं शुद्धं त्वद्रूपं परमेश्वर ॥५४॥

बृहत्त्वाद्बृंहणत्वाच्च यद्रूपं ब्रह्मसंज्ञितम् । तस्मै नमस्ते सर्वात्मन्योगि चिन्त्याविकारिणे ॥५५॥

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात । सर्वव्यापी भुवः स्पर्शादत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥५६॥

में रोमाञ्च हो आया । अत्यन्त भयभीत होकर ध्रुव ने श्रीभगवान् की स्तुति करना चाहा ॥४६॥ इन श्रीभगवान् की स्तुति में मैं क्या कहूँ ? क्या कहने से इनकी स्तुति होगी ? यह सोचकर उसकी बुद्धि व्याकुल हो गयी, अन्त में उसने श्रीभगवान् की शरणागति की ॥४७॥ **ध्रुव ने कहा—** हे भगवन् ! यदि मेरी तपस्या से आप अत्यन्त सन्तुष्ट हैं तो मैं आपकी स्तुति करना चाहता हूँ, मुझे यही वरदान दीजिये कि मैं आपकी स्तुति कर सकूँ ॥४८॥ हे देव ! यदि वेदों को जानने वाले ब्रह्मा आदि भी आपकी गति को नहीं जान पाते हैं तो बालक मैं आपकी स्तुति कैसे कर सकता हूँ ? किन्तु आपकी भक्ति में लगा हुआ मेरा मन हे परमेश्वर ! आपके चरणों की स्तुति करना चाहता है, अतएव मुझे ऐसी बुद्धि दें कि मैं आपकी स्तुति कर सकूँ । **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** हे द्विजवर्य ! उसके पश्चात् जगत् के स्वामी भगवान् गोविन्द ने अपने शङ्ख के अन्तिम भाग से उस बालक का स्पर्श कर दिया ॥४९॥ उसके एकक्षण पश्चात् ही राजकुमार ध्रुव अत्यन्त विनम्र होकर सभी जीवों के पालक भगवान् अच्युत की स्तुति करने लगा ॥५०॥ **ध्रुव ने कहा—** पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, महान् तथा मूलप्रकृति ये सबके सब जिनके रूप (शरीर) हैं, मैं उन श्रीभगवान् को नमस्कार करता हूँ ॥५१॥ शुद्ध, सूक्ष्म, सम्पूर्ण जगत् में व्यापक प्रकृति से भी परे निजका रूप है, जो गुणों के भोक्ता हैं, उन पुरुष को मेरा नमस्कार है ॥५२॥ जो पृथिवी आदि समस्त भूतों, उनके गन्ध आदि गुणों, बुद्धि आदि (महत् तत्त्व आदि) प्रधान (प्रकृति) तथा पुरुष आदि से परे तथा शाश्वत (नित्य) हैं, उन परमात्मा को मेरा नमस्कार है ॥५३॥ उन ब्रह्म स्वरूप, सम्पूर्ण जगत् की आत्मा, सम्पूर्ण जगत् के स्वामी को मैंने नमस्कार करता हूँ । हे परमेश्वर ! आपके शुद्ध (अखिल हेय प्रत्यनीक, अखिल कल्याण गुणाकर) रूप की मैं शरणागति करता हूँ ॥५४॥ स्वेतर समस्त वस्तुओं से (स्वरूपतः तथा गुणतः) महान् होने तथा सभी वस्तुओं को बढ़ाने के कारण जो आपका ब्रह्म संज्ञक रूप है; हे सर्वात्मन् (सबों की अन्तरात्मा स्वरूप) हे योगिजनों के द्वारा ध्यान किए जाने वाले भगवन् ! आपके उसी निर्विकार रूप को मेरा नमस्कार है ॥५५॥ हे प्रभो!

यद्भूतं यच्च वै भव्यं पुरुषोत्तम तद्भवान्। त्वत्तो विराट् स्वराट् सम्राट् त्वत्तश्चाप्यधिपूरुषः ॥५७॥
अत्यरिच्यत सोऽधश्च तिर्यगूर्ध्वं च वै भुवः। त्वत्तो विश्वमिदं जातं त्वत्तो भूतभविष्यती॥५८॥
त्वद्रूपधारिणश्चान्तर्भूतं सर्वमिदं जगत्। त्वत्तो यज्ञः सर्वहुतः पृषदाज्यं पशुर्द्विधा॥५९॥
त्वत्तः ऋचोऽथ सामानि त्वत्तश्छन्दांसि जज्ञिरे। त्वत्तो यजूंष्यजायन्त त्वत्तोऽश्वाश्चैकतो दतः॥६०॥
गावस्त्वत्तः समुद्भूतास्त्वत्तोऽजा अवयो मृगाः। त्वन्मुखाद्ब्राह्मणास्त्वत्तो बाहोः क्षत्रमजायत॥६१॥
वैश्यास्तवोरुजाः शूद्रास्तव पद्भ्यां समुद्गताः। अक्ष्णोः सूर्योऽनिलः प्रणाच्चन्द्रमा मनसस्तव॥६२॥
प्राणोऽन्तः सुषिराज्जातो मुखादग्निरजायत। नाभितो गगनं द्यौश्च शिरसः समवर्तत॥६३॥
दिशः श्रोत्रात्क्षितिः पद्भ्यां त्वत्तः सर्वमभूदिदम् ॥६४॥
न्यग्रोधः सुमहानल्पे यथा बीजे व्यवस्थितः। संयमे विश्वमखिलं बीजभूते तथा त्वयि॥६५॥
बीजादङ्कुरसम्भूतो न्यग्रोधस्तु समुत्थितः। विस्तारं च यथा याति त्वत्तः सृष्टौ तथा जगत्॥६६॥
यथा हि कदली नान्या त्वक्पत्रादपि दृश्यते। एवं विश्वस्य नान्यस्त्वं त्वत्स्थायीश्वर दृश्यते॥६७॥
ह्लादिनी सन्धिनी संवित्त्वय्येका सर्वसंस्थितौ। ह्लादतापकरी मिश्रा त्वयि नो गुणवर्जिते॥६८॥
पृथग्भूतैकभूताय भूतभूताय ते नमः। प्रभूतभूतभूताय तुभ्यं भूतात्मने नमः॥६९॥

आप अनन्त शिरों वाले, अनन्त नेत्रों वाले, अनन्त चरणादिकों वाले, सर्वव्यापक पुरुष हैं, तथा सम्पूर्ण जगत् में व्यापक होकर उसके बाहर भी अनन्त प्रदेश तक व्यापक हैं ॥५६॥ हे भगवन् ! जो कुछ भी भूतकालिक तथा भविष्यत् कालिक है, वह सब कुछ हे पुरुषोत्तम ! आप ही हैं। आप से ही विराट्, स्वराट्, सम्राट् तथा अधिपुरुष (ब्रह्माजी) भी उद्भूत हैं ॥५७॥ आप ही भूलोक से नीचे, तिरछा, ऊपर की ओर बढ़े हुए हैं। आप से ही यह जगत् उद्भूत हुआ है। आपसे ही भूत कालिक तथा भविष्यत् कालिक वस्तुएँ उद्भूत हैं ॥५८॥ यह सम्पूर्ण जगत् आपके शरीर के अन्तर्गत है। जिसमें समस्त पुरोडाश आदि हविष्यों का होम होता है, वह यज्ञ आप ही हैं। आपसे ही पृषदाज्य (दधिमिश्रित घृत) तथा ग्राम्य एवं अरण्य संज्ञक दो प्रकार के पशु उद्भुत हैं ॥५९॥ आपसे ही ऋचाएँ एवं साम उद्भूत हैं। आपसे ही गायत्री इत्यादि छन्द उत्पन्न हुए। आपसे ही यजुष् उत्पन्न हुए अश्व तथा एक ही ओर दाँत वाले महिष इत्यादि पशु आप से उत्पन्न हुए ॥६०॥ आप से ही गायें, बकरी, भेंड़ तथा मृग उत्पन्न हुए हैं॥६१॥ आपके मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुए, दोनों भुजाओं से क्षत्रिय उत्पन्न हुए; जङ्घों से वैश्य तथा चरणों से शूद्र प्रकट हुए। आपके नेत्रों से सूर्य, प्राणों से वायु तथा मन से चन्द्रमा की उत्पत्ति हुयी ॥६२॥ आपके भीतरी छिद्र नासिका से प्राण तथा मुख से अग्नि की उत्पत्ति हुयी। आपके नाभि प्रदेश से आकाश और शिरोभाग से द्युलोक हुआ॥६३॥ आपके श्रोत्र से दिशाएँ एवं पैरों से पृथिवी उत्पन्न हुयी। इस तरह आपसे ही यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है ॥६४॥ जिस तरह अत्यल्प बीज में महान् वटवृक्ष स्थित रहता है, उसी तरह प्रलय काल में बीज स्वरूप आपके भीतर यह सम्पूर्ण विश्व स्थित रहता है ॥६५॥ जिस तरह बीज से उत्पन्न होने वाला अङ्कुर वट वृक्ष के रूप में बढ़कर फैल जाता है उसी तरह सृष्टिकाल में आपसे ही प्रकट होकर जगत् फैल जाता है ॥६६॥ जिस तरह केले का पेड़ छाल और पत्र से अलग नहीं दिखायी देता है, उसी तरह यह सम्पूर्ण जगत् भी आपसे भिन्न नहीं है। हे परमात्मन् ! वह आप में स्थित दिखता है ॥६७॥ जिस तरह सबों के आश्रय स्वरूप संवित आप में केवल ह्लादिनी (सदा आह्लादित करने वाली) तथा सन्धिनी (विच्छेद रहित) रूप से विद्यमान रहती है। चूंकि आप प्राकृतिक गुणों से रहित हैं, इसलिए आपमें ह्लाद तथा संताप उत्पन्न करने वाली अथवा दोनों से मिश्रित राजसी कोई भी संवित् नहीं है ॥६८॥ आप (कार्य

व्यक्तं प्रधानपुरुषौ विराट् सम्राट् स्वराट् तथा। विभाव्यतेऽन्तःकरणे पुरुषेष्वक्षयो भवान्॥७०॥
सर्वस्मिन्सर्वभूतस्त्वं सर्वः सर्वस्वरूपधृक्। सर्वं त्वत्तस्ततश्च त्वं नमः सर्वात्मनेऽस्तु ते॥७१॥
सर्वात्मकोऽसि सर्वेश सर्वभूतस्थितो यतः। कथयामि ततः किं ते सर्वं वेत्सि हृदि स्थितम्॥७२॥
सर्वात्मन्सर्वभूतेश सर्वसत्त्वसमुद्भव। सर्वभूतो भवान्वेत्ति सर्वसत्त्वमनोरथम्॥७३॥
यो मे मनोरथो नाथ सफलः स त्वया कृतः। तपश्च तप्तं सफलं यद्दृष्टोऽसि जगत्पते॥७४॥

श्रीभगवानुवाच

तपसस्तत्फलं प्राप्तं यद्दृष्टोऽहं त्वया ध्रुव। मद्दर्शनं हि विफलं राजपुत्र न जायते॥७५॥
वरं वरय तस्मात्त्वं यथाभिमतमात्मनः। सर्वं सम्पद्यते पुंसां मयि दृष्टिपथं गते॥७६॥

ध्रुव उवाच

भगवन्भूतभव्येश सर्वस्यास्ते भवान् हृदि। किमज्ञातं तव ब्रह्मन्मनसा यन्मयेक्षितम्॥७७॥
तथापि तुभ्यं देवेश कथयिष्यामि यन्मया। प्रार्थ्यते दुर्विनीतेन हृदयेनातिदुर्लभम्॥७८॥
किं वा सर्वजगत्स्रष्टः प्रसन्ने त्वयि दुर्लभम्। त्वत्प्रसादफलं भुङ्क्ते त्रैलोक्यं मघवानपि॥७९॥
नैतद्राजासनं योग्यमजातस्य ममोदरात्। इतिगर्वादवोचन्मां सपत्नी मातुरुच्चकैः॥८०॥
आधारभूतं जगतः सर्वेषामुत्तमोत्तमम्। प्रार्थयामि प्रभो स्थानं त्वत्प्रसादादतोऽव्ययम्॥८१॥

दृष्ट्या) पृथक् रूप तथा कारण दृष्ट्या एकरूप है। प्रभूतभूत स्वरूप (पञ्चभूत शरीरक) आपको नमस्कार है। प्रभूतभूतभूत (देव मनुष्यादि सकल जीव शरीरक) सर्वभूत शरीरक आपको नमस्कार है ॥६९॥ आप ही समस्त जीवों के अन्तःकरण में, ध्यानकाल में व्यक्त (महदादि), प्रधान (प्रकृति), पुरुष (जीव), विराट्, सम्राट् तथा स्वराट् रूप से ध्यान किए जाते हैं। आप क्षयशील पुरुषों में अक्षय स्वरूप हैं ॥७०॥ आप आकाशादि सभी पदार्थों में उनके स्वरूप भूत शब्दादिरूप से विराजमान हैं। सब कुछ आप से ही उद्भुत हुआ है, अतएव सर्वात्मा आप ही हैं। आप सर्वात्मा को मेरा नमस्कार है ॥७१॥ हे सर्वेश ! आप सर्वात्मक हैं, क्योंकि आप सभी भूतों में स्थित हैं, मेरे हृदय में जो कुछ भी है उसे आप जानते हैं, अतएव मैं आपसे क्या कहूँ ?॥७२॥ हे सर्वात्मन् ! हे समस्त भूतों के स्वामिन् ! हे सभी सत्त्वों के उत्पत्ति स्थान स्वरूप ! आप सर्वस्वरूप होने के कारण सभी प्राणियों के मनोरथ को स्वयं जानते हैं ॥७३॥ हे नाथ ! मेरा जो मनोरथ है उसे आपने सफल बना दिया। मेरे द्वारा की गयी तपस्या सफल हो गयी, क्योंकि हे जगत् पते ! आपने मुझे दर्शन दे दिया ॥७४॥ **श्रीभगवान् ने कहा**— तुमने जो तपस्या की उसका फल तो तुम्हें मिल गया, क्योंकि तुमने मेरा दर्शन कर लिया; किन्तु हे राजकुमार ! मेरा दर्शन भी तो विफल नहीं होता है ॥७५॥ अतएव तुमको जो अभिमत हो वह वरदान तुम माँग लो, मेरा दर्शन कर लेने वाले पुरुष को तो सब कुछ प्राप्त हो जाता है ॥७६॥ **ध्रुव ने कहा**— हे भूतभव्येश भगवन् ! आप सबों के हृदय में विद्यमान हैं। अतएव मेरे मन में जो अभिलाषा है, वह आपको ज्ञात नहीं है क्या ?॥७७॥ फिर भी हे देवेश ! दुर्विनीत मैं जिस अत्यन्त दुर्लभ वस्तु को हृदय से चाहता हूँ, उसे आपसे निवेदित करूँगा ॥७८॥ हे सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करने वाले भगवन्! आपके प्रसन्न हो जाने पर कौन सी वस्तु दुर्लभ हो सकती है ? इन्द्र भी आपकी कृपा के फल रूप से त्रैलोक्य का राज्य भोगते हैं ॥७९॥ भगवन् ! मेरी सौतेली माँ ने बड़े गर्व से जोर-जोर से कहा था कि जो मेरे गर्भ से उत्पन्न नहीं है वह राजासन के योग्य नहीं है ॥८०॥ अतएव हे प्रभो ! मैं आपकी कृपा से, जगत् के आधारभूत, उत्तमोत्तम तथा कभी भी विनष्ट नहीं होने वाले स्थान को प्राप्त करना चाहता हूँ ॥८१॥ **श्रीभगवान् ने कहा**— हे बालक !

श्रीभगवानुवाच

यत्त्वया प्रार्थ्यते स्थानमेतत्प्राप्स्यति वै भवान्। त्वयाऽहं तोषितः पूर्वमन्यजन्मनि बालक ॥८२॥

त्वमासीर्ब्राह्मिणः पूर्वं मय्येकाग्रमतिः सदा। मातापित्रोश्च शुश्रूषुर्निजधर्मानुपालकः ॥८३॥

कालेन गच्छता मित्रं राजपुत्रस्तवाभवत्। यौवनेऽखिलभोगाढ्यो दर्शनीयोज्ज्वलाकृतिः ॥८४॥

तत्सङ्गात्तस्य तामृद्धिमवलोक्यातिदुर्लभाम्। भवेयं राजपुत्रोऽहमिति वाञ्छा त्वया कृता॥८५॥

ततो यथाभिलषिता प्राप्ता ते राजपुत्रता। उत्तानपादस्य गृहे जातोऽसि ध्रुव दुर्लभे॥८६॥

अन्येषां दुर्लभं स्थानं कुले स्वायम्भुवस्य यत् ॥८७॥

तस्यैतदपरं बाल येनाहं परितोषितः। मामाराध्य नरो मुक्तिमवाप्नोत्यविलम्बिताम् ॥८८॥

मय्यर्पितमना बाल किमु स्वर्गादिकं पदम् ॥८९॥

त्रैलोक्यादधिके स्थाने सर्वताराग्रहाश्रयः। भविष्यति न सन्देहो मत्प्रसादाद्भवान्ध्रुव॥९०॥

सूर्यात्सोमात्तथा भौमात्सोमपुत्राद्बृहस्पतेः। सितार्कतनयादीनां सर्वर्क्षाणां तथा ध्रुव॥९१॥

सप्तर्षीणामशेषाणां ये च वैमानिकाः सुराः। सर्वेषामुपरि स्थानं तव दत्तं मया ध्रुव ॥९२॥

केचिच्चतुर्युगं यावत्केचिन्मन्वन्तरं सुराः। तिष्ठन्ति भवतो दत्ता मया वै कल्पसंस्थितिः ॥९३॥

सुनीतिरपि ते माता त्वदासन्नातिनिर्मला। विमाने तारका भूत्वा तावत्कालं निवत्स्यति॥९४॥

ये च त्वां मानवाः प्रातः सायं च सुसमाहिताः। कीर्त्तयिष्यन्ति तेषां च महत्पुण्यं भविष्यति ॥९५॥

श्रीपराशर उवाच

एवं पूर्वं जगन्नाथाद्देवदेवाज्जनार्दनात्। वरं प्राप्य ध्रुवः स्थानमध्यास्ते स महामते ॥९६॥

तुमने पूर्वजन्म में भी मुझे सन्तुष्ट किया था अतएव तुम जो चाहते हो उसे अवश्य प्राप्त करोगे ॥८२॥ पूर्वजन्म में तुम, मुझमें एकाग्रचित्त वाला, अपने माता-पिता की सेवा करने वाला तथा अपने धर्म का पालन करने वाला ब्राह्मण था ॥८३॥ बाद में एक राजकुमार तुम्हारा मित्र हो गया। वह अपनी युवावस्था में समस्त भोग्य पदार्थों से सम्पन्न दर्शनीय था और सुन्दर आकार वाला था ॥८४॥ उसकी सङ्गति के कारण उसकी समृद्धि को देखकर तुम्हारे मन में हुआ कि मैं भी राजपुत्र होऊँ ॥८५॥ इसीलिए तुम उत्तानपाद के दुर्लभ गृह में राजकुमार हुए, जो तुम्हें अभिलषित था॥८६॥ क्योंकि स्वायम्भुव मनु के वंश में स्थान प्राप्त करना दूसरों के लिए दुर्लभ है ॥८७॥ बालक ! तुम मेरे भक्त हो अतएव तुम्हारे लिए तो स्वायम्भुव मनु के वंश में जन्म अपर (तुच्छ) है। मेरी अराधना करके मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति (जैसी दुर्लभ वस्तु को भी) प्राप्त कर लेता है ॥८८॥ जिसका मन मुझमें निरन्तर लगा रहता है उसके लिए स्वर्गादि का पद क्या है ? (अत्यन्त तुच्छ है) ॥८९॥ हे ध्रुव ! मेरी कृपा से त्रैलोक्य से भी उत्तम स्थान में तुम समस्त तारों एवं ग्रहों के आश्रय बनोगे ॥९०॥ हे ध्रुव ! मैं तुम्हें वह स्थान देता हूँ जो सूर्य, सोम, भौम, बुध, बृहस्पति, शुक्र तथा शनि आदि ग्रहों सभी नक्षत्रों, सभी सप्तर्षियों तथा सभी देवताओं से ऊपर है ॥९१-९२॥ कुछ देवता चार युगों तक तथा कोई देवता एक मन्वन्तर तक रहते हैं; किन्तु तुमको मैंने एक कल्प पर्यन्त की स्थिति प्रदान की है ॥९३॥ तुम्हारी माता सुनीति भी तुम्हारे सन्निकट में ही तारा बनकर उतने ही समय तक निवास करेगी॥९४॥ जो मनुष्य सायंकाल तथा प्रातःकाल तुम्हारा नाम लेंगे, उनको महान् पुण्य की प्राप्ति होगी ॥९५॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** हे महामते ! इस प्रकार से पूर्वकाल में जगत् के स्वामी, देवों के आराध्य भगवान् जनार्दन से वर को प्राप्त करके ध्रुव उस स्थान में स्थित हैं ॥९६॥ हे मैत्रेय ! धर्मपूर्वक अपने माता-पिता की सेवा

स्वयं शुश्रूषणाद्धर्म्यान्मातापित्रोश्च वै तथा। द्वादशाक्षरमाहात्म्यात्तपसश्च प्रभावतः ॥९७॥
तस्याभिमानमृद्धिं च महिमानं निरीक्ष्य हि। देवासुराणामाचार्यः श्लोकमत्रोशना जगौ॥९८॥
अहोऽस्य तपसो वीर्य महोऽस्य तपसः फलम्। यदेनं पुरतः कृत्वा ध्रुवं सप्तर्षयः स्थिताः ॥९९॥
ध्रुवस्य जननी चेयं सुनीतिर्नाम सूनृता। अस्याश्च महिमानं कः शक्तो वर्णयितुं भुवि॥१००॥
त्रैलोक्याश्रयतां प्राप्तं परं स्थानं स्थिरायति। स्थानं प्राप्ता परं धृत्वा या कुक्षिविवरे ध्रुवम् ॥१०१॥
यश्चैतत्कीर्त्तयेन्नित्यं ध्रुवस्यारोहणं दिवि। सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते ॥१०२॥
स्थानभ्रंशं न चाप्नोति दिवि वा यदि वा भुवि। सर्वकल्याणसंयुक्तो दीर्घकालं स जीवति ॥१०३॥

इति श्रीविष्णुमहापुराणे प्रथमेऽशे द्वादशोऽध्यायः

तेरहवाँ अध्याय

श्रीपराशर उवाच

ध्रुवाच्छिष्टिं च भव्यं च भव्याच्छम्भुर्व्यजायत। शिष्टेराधत्त सुच्छाया पञ्चपुत्रानकल्मषान्॥१॥
रिपुं रिपुञ्जयं विप्रं वृकलं वृकतेजसम्। रिपोराधत्त बृहती चाक्षुषं सर्वतेजसम्॥२॥
अजीजनत्पुष्करिण्यां वारुण्यां चाक्षुषो मनुम्। प्रजापतेरात्मजायां वीरणस्य महात्मनः॥३॥

करने, अपने धर्म का पालन करने वाले, द्वादशाक्षर मन्त्र की महिमा के कारण तथा तपस्या के प्रभाव से ध्रुव के असामान्य ऐश्वर्य तथा महिमा को देखकर देवताओं तथा असुरों के आचार्य शुक्राचार्य ने इन श्लोकों का गान किया है॥९८॥ ध्रुव की तपस्या का बल आश्चर्यकारी है, इसकी तपस्या का फल प्रशंसनीय है, क्योंकि इस ध्रुव को ही आगे रखकर सप्तर्षिगण स्थित हैं ॥९९॥ ध्रुव की माता सुनीति भी सुनृत (सुशील तथा सत्यवादिनी) हैं, संसार में उसकी महिमा का वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है ?॥१००॥ जो अपनी कुक्षि में ध्रुव को धारण करके त्रैलोक्य के आश्रयभूत सर्वोत्तम स्थान को प्राप्त कर ली तथा जो स्थान भविष्य में भी स्थिर रहने वाला है ॥१०१॥ जो व्यक्ति ध्रुव के इस द्युलोकारोहरण के प्रसङ्ग का कीर्तन करता है, वह सभी पापों से विनिर्मुक्त होकर स्वर्गलोक में सम्मानित होता है ॥१०२॥ वह चाहे स्वर्गलोक में रहे अथवा भूलोक में, अपने स्थान से वह कभी भी च्युत नहीं होता है। सभी कल्याणों से सम्पन्न होकर वह दीर्घकाल तक जीवित रहता है ॥१०३॥

इस तरह श्रीविष्णुमहापुराण के प्रथम अंश के बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१२॥

राजा वेन तथा पृथु का चरित्र

श्रीपराशर महर्षि ने कहा— ध्रुव से उसकी पत्नी में शिष्टि तथा भव्य नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। भव्य से शम्भु का जन्म हुआ। शिष्टि से उसकी पत्नी सुच्छाया ने पाँच निष्पाप पुत्रों को अपने गर्भ में धारण किया ॥१॥ उनके नाम है— रिपु, रिपुञ्जय, विप्र, वृकल और वृकतेजस। रिपु के बृहती के गर्भ से महातेजस्वी चाक्षुष का जन्म हुआ ॥२॥ चाक्षुष से महात्मा वीरण प्रजापति की पुत्री तथा वारुण कुल में उत्पन्न पुष्करिणी ने मनु को उत्पन्न किया।